Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
January to March 2025 E-Journal, Volume I, Issue XLIX, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

आचार्य विशुद्धसागर के साहित्य में अध्यात्म और दर्शन : एक समीक्षात्मक दृष्टिकोंण

डॉ. रचना तैलंग* दिलीप कुमार जैन**

* प्राध्यापक (हिन्दी) शास. हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय भोपाल (म.प्र.) भारत
** शोधार्थी (हिन्दी) शास. हमीदिया कला एवं वाणिज्य स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.) भारत

प्रस्तावना – ***'अध्यात्म और चिंतन मानव जीवन के महनीय तत्व हैं जो जीवन को सार्थकता प्रदान करते हैं। अध्यात्म के द्वारा हम अपनी आत्मा के स्वरूप को पहचानने का उपक्रम करते हैं। चिंतन हमें वस्तु के मूल स्वरूप को जानने की प्रेरणा प्रदान करता है। जब हमारा चिंतन सकारात्मक होता है तो व्यक्ति को वस्तु का मूल स्वरूप समझ में आता हैं इस मूल स्वरूप को जानने के पश्चात् व्यक्ति अध्यात्म की जिस दिशा में अग्रसर होता है वही उसके आत्मकल्याण का प्रबल आधार बनता है। भव-भव से बंधन मुक्त होने का एक ही उपाय है कि व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को पहचाने और मोक्षमार्ग पर अग्रसर होकर मुक्ति को प्राप्त करे।'***

श्रमण संस्कृति वीतराग मार्ग की परिचायक है, इसे दूसरे शब्दों में दिगम्बर संस्कृति भी कहा जाता है। यह संस्कृति अहिंसा, अपरिग्रह, तप, त्याग व संयम की शिखर ऊँचाईयों की द्योतक है। भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर व 24 तीर्थंकरों ने दिगम्बरत्व को धारण कर तपश्चर्या के जिस मार्ग पर अपने जीवन को लगाया था उससे दिगम्बरत्व की अवधारणा भारतीय सांस्कृतिक चेतना की अक्षय निधि बन गई थी।

दिगम्बर संस्कृति का जीवन और जगत से गहरा संबंध रहा है इसमें अध्यात्म और दर्शन का अत्यंत गंभीरता से अध्ययन देखने को मिलता है। ऐसी मान्यता है कि जब तक मानव चिंतन करता रहेगा तब तक उसके जीवन में दर्शन का महत्व बना रहेगा। अर्थात जीवन और जगत के विश्लेषण से ही दर्शन का जन्म होता है। मानव ने सर्वपथम 'स्व' पर चितंन किया। तत्पश्चात् अपनी निकटतम वाह्य वस्तुओं पर चिंतन किया। इस प्रकार 'स्व' और 'पर' चिंतन 'स्व' और 'पर' का चिंतन नहीं दर्शन के उद्भव का प्रथम सोपान है। 'कुछ दार्शनिकों का चितंन यदि तर्क पर आधारित है तो किसी का आश्चर्य पर।'[1] किसी ने संदेह को अपने चिंतन का माध्यम बनाया तो किसी ने आत्मतत्त्व, बुद्धि, प्रेम, बाह्य जगत, आदि को प्रधानता दी है। इस तरह दर्शन की उत्पत्ति जिज्ञासा, संदेह या मानसिक अशांति से होती है। मन के अन्दर अन्वेषण और शोध की प्रवृत्ति का जाग्रत होना दर्शन का विषय है।

1. भारतीय दर्शन का मूल स्रोत – भारतीय दर्शन के मूल स्रोत के रूप में 'दु:ख निवृति के उपाय की जिज्ञासा।' अत: जीवन के प्रति उदासीनता, बैचेनी, और असंतोष की भावना से दर्शन का प्रारंभ होता है। 'इसीलिए गौतम बुद्ध ने शांति की खोज में वनों एवं पर्वतों की कंदराओं में जाकर जीवन के लक्ष्यों पर विचार किया और यही से उनका दर्शन प्रारंभ हुआ।'[2]

भारतीय दार्शनिकों ने तत्व के साक्षात्कार या उपलब्धि को दर्शन कहा है। सबसे प्रमुख तत्त्व आत्मा है। कहा भी है– 'आत्मानि विज्ञायते सर्वभिदम विज्ञातम भवति' अर्थात जो आत्मा को जान लेता है। 'मुक्तिपूर्वक तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के प्रयास को ही दर्शन कहा है।'[3] अत: 'दर्शन शब्द का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ है – देखना, विचारना, श्रद्धा करना।'[4]

यहाँ पर एक सीधा सा प्रश्न खड़ा होता है कि जीवन में दर्शन की आवश्यकता क्यों हुई। इसके पीछे मुख्य कारण यह समझ में आता है कि मनुष्य दर्शन जगत से जुड़कर विभिन्न प्रकार का ज्ञान जीवन में प्राप्त करना चाहता है। दर्शन अर्थात दार्शनिक चिंतन की 'बुनियाद'। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि दर्शन उस तत्त्व की खोज करता है जिससे जगत के दु:खों का निवारण हो और किसी उपाय के द्वारा सर्वोच्च सुख की प्राप्ति की जाए। अत: सांसारिक दु:खों के बंधान की निवृत्ति ही जिसे मोक्ष कहा गया है, भारतीय दर्शन का मुख्य लक्ष्य रहा है।

2. आचार्य विशुद्धसागर का दर्शन और अधयात्म – आचार्य विशुद्धसागर का सृजन मुख्य रूप से दर्शन और अध्यात्म को ही केन्द्र बिन्दु मानकर लिखा गया है। आचार्य श्री का मानना है कि सांसारिक प्राणी भौतिक चकाचौंध में अपने जीवन के मुख्य लक्ष्य को भूलकर इस संसार में ऐसा उलझ जाता है कि उसे इस उलझन के परिणामों को भवों-भवों तक भोगना पड़ता है। यही वजह है कि आचार्य श्री व्यक्ति को वाह्य वस्तुओं के प्रति अनासक्त होकर आत्मतत्त्व से जोड़ने की प्रेरणा देते हैं, क्योंकि अध्यात्म साधारण को असाधारण बना देता है। साधारण मनुष्य इच्छाओं के वशीभूत अतृप्ति में जीता है और असाधारण मनुष्य इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर आत्मसुख की अनुभूति करता है। साधारण व्यक्ति को सांसारिक सुख की तलाश होती है जबकि असाधारण व्यक्ति करुणा के भाव को अपनी आत्मा में जागृत कर उसे सम्यक्दर्शन का अंग बनालेता है। साधारण व्यक्ति मोह में जीता है और असाधारण व्यक्ति मोह छोड़कर पुरुषार्थ के द्वारा मोक्ष की ओर अग्रसर होता है। आचार्य श्री का मानना है कि यदि व्यक्ति आत्मसुख की प्राप्ति करना चाहता है तो उसे ममत्व भाव को छोड़ना पड़ेगा, क्योंकि विषय कषाय में जीने वाला व्यक्ति उस शीतल सरोबर का आनंद प्राप्त नहीं कर सकता जो वो चाहता है। इसके लिए उसे विषय कषायों के दल-दल से निकलकर आत्मविशुद्धि में रमण करना होगा। आचार्य श्री लिखते हैं–

'विषयों की ज्वाला में
जलने वालों को

समाधि जल से पूर्ण
चैतन्य शीतल सरोवर का
सुख प्राप्त नहीं होता।
वह विषय कषायों के दलदल में फँसकर
आत्मविशुद्धि से हीन
होकर रो रहा है।'[5]

इस भौतिक संसार के क्रियाकलापों में व्यक्ति यह भूल जाता है कि उसे जो कुछ इस संसार में दिख रहा है वही सत्य है। जबकि ऐसा नहीं है। जो सत्य है वो नजर इसलिए नहीं आता क्योंकि व्यक्ति की दृष्टि जब तक बाह्य जगत की ओर रहेगी तब तक वह आंतरिक सुख की अनुभूति नहीं कर सकता है। पुण्य के प्रभाव से यदि मान-सम्मान और यश की प्राप्ति होती है तो यह सब सामयिक है। इसका कोई स्थायी अस्तित्व नहीं है। इन अस्थिर चीजों के प्रति लगाव व्यक्ति को अपने लक्ष्य से भटकने के लिए विवश कर देता है। इस सत्य को जानने के लिए आचार्य श्री कहते हैं-

मत भूल जाना
जो दिख रहा है
लोक यश
मान-सम्मान
वह पुण्य का
विपाक है।
पाप-विपाक के
आने पर दर-दर
भटकना पड़ता है।
अत: विपाक के
मर्म को जान।'[6]

आत्मसुख को प्राप्त करने के लिए हमें चिंतन-मनन करते हुए अध्यात्म की ओर प्रवृत्ता होना होगा। अध्यात्म की अनुभूति वही कर सकता है जिसने संकल्पित भाव से संयम को धारण किया हो। संयम के द्वारा व्यक्ति असद् वृत्तियों का परित्याग कर सद्वृत्तियों की ओर प्रवृत्त होता है। ये सद्वृत्तियाँ व्यक्ति के जीवन में शुचिता का संचार करते हुए निर्मल भावों का प्रादुर्भाव कर आत्मप्रेरणा देकर सुख को प्राप्त करने की ओर इंगित करती हैं जो कि हमारे जीवन का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। संयम के महात्म्य को प्रतिपादित करते हुए आचार्य श्री लिखते हैं।-

'सुख का साधन है
संयम भाव
दुर्गत से रक्षक है
संयम भाव
सुगति का साधन है
संयम भाव
प्राणी मात्र की
प्रवृत्ति की निवृत्ति है
संयम भाव
संयम पर जो जीता है,
वह पूज्यता को पाता है।'[7]

इस प्रकार आचार्य विशुद्धसागर द्वारा अध्यात्म, दर्शन के स्वरूप को अपने सृजन के माध्यम से जिन उदात्त भावों के साथ अभिव्यक्ति प्रदान की है वह नि:संदेह जगत के प्राणियों के लिए मोक्षमार्ग पर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा प्रदान करती है। वास्तव में देखा जाये तो उनका समग्र सृजन अध्यात्म और दर्शन से ओतप्रोत है। मानव के अंदर व्याप्त उसकी शक्ति और ऊर्जा को जागृत करने के लिए आचार्य श्री ने जो अध्यात्म की संजीवनी प्रदान की है तथा उससे आम श्रावकों में जो जागृति आयी है वह निश्चित रूप से उनके आत्मकल्याण की भावना को पुष्ट करेगी और उनका जीवन अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा।

निष्कर्ष - आचार्य विशुद्धसागर अध्यात्म और दर्शन के पुरोध हैं। अध्यात्म हमें आत्मदर्शन की प्रेरणा देता है और चिंतन के द्वारा हम इस भौतिक जगत के सत्यासत्य को जानने का प्रयास करते हैं। भौतिकता की चकाचौंध में फंसा हुआ व्यक्ति अध्यात्म के महत्व को नहीं समझ पाता और चिंतन की भावना उसमें जाग्रत नहीं होती। इसीलिए वह जीवन के उन मूल्यवान क्षणों को भी यूँ ही व्यतीत कर देता है, जो कि उसके लिए काफी महत्वपूर्ण होते हैं। विवेक और बोध की जाग्रति प्रत्येक मनुष्य में अपरिहार्य मानी गयी है, जब तक हम आत्मचिंतन के द्वारा उस जीवन के मूल उद्देश्य को समझने का प्रयास नहीं करेंगे तब तक जीवन को अर्थवान बना पाना कदापि संभव नहीं है। इसलिए व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन के मूल उद्देश्य को समझने का प्रयास करे, आत्मकल्याण की ओर प्रवृत्त हो, मोह के बंधनों से छुटकारा पाने का प्रयत्न करे, विकारों से दूरी बनाते हुए यह प्रयास करे कि उसे आत्मविशुद्धि के माधयम से कल्याण की दिशा में प्रवृत्त होकर जीवन को सार्थक बनाना है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. Phylosphy being in wonder (दर्शन का उद्भव और आश्चर्य), प्लेटो का कथन।
2. जैन काव्यों का दार्शनिक मूल्यांकन, - डॉ. जिनेन्द्र जैन, पृष्ठ-129
3. भारतीय दर्शन चटर्जी एवं दत्त, पुस्तक भंडार पटना, पृष्ठ-01,
4. सर्वदर्शन संग्रह (माधवाचार्य), भाष्यकार - प्रो. उमाशंकर शर्मा 'ऋषि', पूर्व पीठिका -पृष्ठ-26।
5. ज्ञायक भाव, (घातक), आचार्य विशुद्धसागर, पृष्ठ-389
6. वही, (कर्म विपाक), पृष्ठ-425
7. वही, (संयम धार्म), पृष्ठ - 259

****